REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2025

भीष्म साहनी की कहानियों में साम्प्रदायिकता का अध्ययन

बुद्धि प्रकाश त्रिपाठी
शोधार्थी हिन्दी
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. एन.पी. प्रजापति
सहायक प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय महाविद्यालय, बाणसागर, शहडोल (म.प्र.)

सारांश –

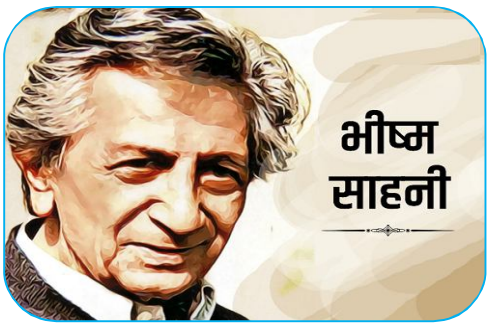

भीष्म साहनी आधुनिक हिंदी कथा–साहित्य के उन महत्वपूर्ण रचनाकारों में अग्रगण्य हैं, जिनकी कहानियों में भारतीय समाज की जटिलताओं, विसंगतियों और मानवीय संकटों का अत्यंत सजीव और प्रामाणिक चित्रण मिलता है। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद के सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तनों ने भारतीय समाज में जहाँ नए अवसरों के द्वार खोले, वहीं साम्प्रदायिकता, जातीय वैमनस्य, धार्मिक कट्टरता और सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ भी अधिक तीव्र रूप में उभरकर सामने आईं। भीष्म साहनी, जिन्होंने विभाजन की त्रासदी को प्रत्यक्ष रूप से देखा और महसूस किया था, इन सामाजिक तनावों और साम्प्रदायिक उन्माद को अपनी कहानियों में एक विशिष्ट संवेदनशीलता और यथार्थपरकदृष्टि के साथ रूपायित करते हैं।

मुख्य शब्द – भीष्म साहनी, आधुनिक हिंदी, कथा–साहित्य एवं साम्प्रदायिकता।

प्रस्तावना –

साम्प्रदायिकता उनके कथा–संसार का केन्द्रीय विषय नहीं होते हुए भी एक गहरी सामाजिक–मानसिक प्रक्रिया के रूप में बार–बार उभरता है। उनकी कहानियों में साम्प्रदायिकता केवल दो समुदायों के संघर्ष की बाहरी घटनाओं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मनुष्य के भीतर बसे हुए पूर्वाग्रहों, भय, गलत धारणाओं, सत्ता–चालित अफवाहों और सामाजिक संरचना में व्याप्त असमानताओं को भी उजागर करती है। वे बताते हैं कि साम्प्रदायिकता किसी एक घटना का परिणाम नहीं, बल्कि एक लंबे ऐतिहासिक, राजनीतिक और आर्थिक अनुक्रम का हिस्सा है, जिसे समझे बिना उसका समाधान संभव नहीं।

भीष्म साहनी का योगदान इस बात में है कि उन्होंने साम्प्रदायिकता के चित्रण को दार्शनिक उपदेश या भावनात्मक उत्तेजना का रूप नहीं दिया, बल्कि उसे मानवीय धरातल पर देखने का प्रयास किया। उनके पात्र

साम्प्रदायिक उन्माद के बीच भी अपनी मानवीय संवेदना, करुणा और विवेक को बचाए रखने का संघर्ष करते दिखाई देते हैं। इस संघर्ष में कहीं भय है, कहीं विवशता, कहीं सामाजिक दबाव और कहीं विवेक एवं संवेदना का उदय। यह दृष्टि उनकी कहानियों को केवल सामाजिक आलोचना का रूप नहीं देती, बल्कि उन्हें मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का माध्यम भी बनाती है।

भीष्म साहनी की कहानियों में साम्प्रदायिकता का कथ्य अक्सर छोटे–छोटे प्रसंगों, संवादों, व्यवहारों, भ्रमों और अफवाहों के रूप में सामने आता है। वे यह स्पष्ट करते हैं कि साम्प्रदायिकता केवल बड़े दंगों या हिंसक घटनाओं में नहीं, बल्कि सामान्य जीवन के सूक्ष्म व्यवहारों में भी मौजूद रहती है–पड़ोस के रिश्तों में, बाजार के व्यवहार में, राजनीतिक भाषणों में, पहचान के दबावों में और सामाजिक धारणाओं में। उनकी दृष्टि का मूल यही है कि साम्प्रदायिकता का मुकाबला केवल कानून से नहीं, बल्कि मानवीय सहअस्तित्व, पारस्परिक विश्वास और सामाजिक न्याय से ही किया जा सकता है।

विश्लेषण –

भीष्म साहनी की कहानियों का साम्प्रदायिकता–चित्रण न केवल सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज है, बल्कि मानवीय मूल्यों, सहअस्तित्व और संवेदनशीलता की रक्षा का एक साहित्यिक प्रयास भी है। उनकी रचनाएँ यह स्थापित करती हैं कि साहित्य का कार्य केवल समाज का प्रतिबिंब बनना नहीं, बल्कि समाज को अधिक मानवीय, संवेदनशील और न्यायपूर्ण दिशा में मार्गदर्शन प्रदान करना भी है।

भारतीय जीवन में धर्म के महत्व को जानकर ही भीष्म जी ने अपनी कहानियों में कट्टर धार्मिकता और साम्प्रदायिकता पर करारा व्यंग्य किया है। अंधश्रद्धा, अंधभक्ति तथा अंधविश्वास मनुष्य को कितना बर्बर और मानवीय बना देते हैं यह उनकी अनेक कहानियों में देखने को मिलता है। देश–विभाजन की त्रासदी ने कैसे मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बनाया है और कट्टर साम्प्रदायिकता के कारण मनुष्य के खून की होली कैसे खेली गई इसका विदारक चित्रण 'तमस' उपन्यास के साथ–साथ अनेक कहानियों में हुआ है। कट्टर धार्मिकता और साम्प्रदायिकता का जो नंगा नाच भीष्म जी ने अपनी आँखों से देखा था उसकी व्यथा और पीड़ा जीवन भर उनके हृदय को मसोसती रही। 'अमृतसर आ गया है' तथा 'जहूरबख्श' इसका ज्वलंत उदाहरण है। इसी प्रकार से 'सरदारनी' नामक कहानी में एक ऐसी निर्भय और साहसी नारी का चित्रण किया गया है जो अपने खुद के प्राणों को संकट में डालकर मास्टर करीमदीन को धार्मिक और साम्प्रदायिक दंगों से बचाती है।

साम्प्रदायिक दंगों की भीषणता के साथ–साथ भीष्मजी ने धार्मिक अंधविश्वास और भाग्यवाद पर तीखी व्यंग्यात्मक कहानियाँ लिखी हैं। ईश्वर या धर्म के प्रति अंधविश्वास मनुष्य को कैसे वास्तविकताओं से दूर ले जाता है इसका चित्रण उन्होंने 'मालिक का बंदा' कहानी में किया है। इस कहानी में एक हवलदार ही रेलवे गोदाम से माल चुराकर एक मंदिर बनाता है। उसका यह विश्वास है कि, 'भगवान का हुक्म हो, तो सब काम हो जाते हैं। भगवान में विश्वास चाहिए। भगवान खुद रास्ता दिखाते हैं, खुद हुक्म देते हैं।''[1] इस अंधविश्वास पर लेखक गहरा आघात करते हैं। भगवान के नाम पर हो रहे अनर्थ कार्यों को ही लेखक ने इस कहानी में दर्शाया है। धार्मिक अंधश्रद्धा न केवल निरर्थक और घातक है अपितु 'एष धर्माः सनातनः' नामक कहानी में महन्त रामदास के माध्यम से निम्न जाति के लोगों की मंदिर प्रवेश की समस्या उठाते हैं। महंत रामदास यह समझता है कि अछूतों के प्रवेश से मंदिरों की पवित्रता नष्ट हो जाती है इसलिए वह मंदिर छोड़कर चला जाता है। लेकिन वह जहाँ भी जाता है वहाँ उसे इससे भी ज्यादा अपवित्र चीजें देखने को मिलती हैं। काशी में उन्हें दर–दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। वर्तमान युग में भी किस प्रकार से धर्म के नाम पर पैसे ऐंठे जाते हैं इसका मार्मिक चित्रण इस कहानी में हुआ है।

भीष्म साहनी की कहानियों में इस वैज्ञानिक युग में भी धर्म के नाम पर कैसे जनसामान्य के साथ भावनात्मक क्रूर खेल खेले जाते हैं इसका यथार्थ चित्रण हुआ है। स्वयं लेखक साम्यवादी विचारधारा को लेकर चलने वाले हैं इसीलिए उन्हें अंधभक्ति, अंधश्रद्धा, अंधविश्वास और निरर्थक आस्थाओं से न केवल घृणा है अपितु वितृष्णा भी है। भीष्म जी की कहानियाँ धार्मिक स्थितियों का मात्र चित्रण नहीं करती बल्कि उसमें जो दोष, अंधविश्वास और अंधश्रद्धा है उसे रेखांकित करती है।

'अमृतसर आ गया है' इस कहानी–संग्रह की एक उल्लेखनीय कहानी है। देश–विभाजन वैसे भी भीष्म साहनी जी के लिए बड़ा संवेदनशील विषय रहा है। इस विषय को लेकर उन्होंने कहानियों के साथ–साथ उपन्यास भी लिखे हैं। विभाजन की त्रासदी क्या होती है इसे लेखक ने केवल खुली आँखों से देखा अपितु भोगा भी था। संभवतः इसी कारण विभाजन के भीषण परिणामों की यातना और पीड़ा 'अमृतसर आ गया है' जैसी कहानी में व्यक्त हुई है। इस कहानी के विषय में प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है, ''अमृतसर आ गया है, कहानी देश–विभाजन के बाद लोगों के दिलों में पैदा हुई दरार की कहानी कहती है जिसमें मानवीय स्वभाव की दयालुता और करुणा के संकेत भी मिलते हैं।''[2] दयालूता और करुणा के साथ–साथ यह कहानी मानवीय संबंधों के क्रूर और अंधी साम्प्रदायिकता का चित्रण करती है। तथ्य तो यह है कि देश–विभाजन की पीड़ा को आज भी हम भोग रहे हैं। विभाजन के खून में रंगे दाग इतने गहरे हैं कि मिटाएं नहीं मिटते क्योंकि जब कभी साम्प्रदायिक दंगे होते हैं तब यह नहीं देखा जाता कि जिसे मारा जा रहा है या जो मार रहे हैं इनमें दोष किसका है? इस कहानी में मार खाने वाला पहचान ने की कोशिश कर रहा है कि उसे जो मार रहे हैं ये कौन है? और वे किस अदावत का बदला ले रहे हैं?

इस कहानी में हिन्दू और मुसलमान के दंगो से ग्रस्त व्यक्ति जब गाड़ी में चढ़ना चाहते हैं तब दो साम्प्रदायिक व्यक्तियों की मनः स्थिति किस प्रकार की हो जाती है इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखक ने किया है। 'अमृतसर आ गया है' कहानी में एक ओर ऐसे लोग हैं जो दंगों से ग्रस्त हैं और भयभीत होकर रेलगाड़ी में चढ़ना चाहते हैं। तो दूसरी ओर गाड़ी खचाखच भरी हुई है और अंदर बैठे हुए लोग बाहर के लोगों को चढ़ने नहीं देते। कोई चढ़ने में सफल भी हो जाता है तो उसका सामान नीचे रह जाता है। कहानी में जब एक व्यक्ति रेल के डिब्बे की सीढ़ियों पर खड़ा दरवाजा खोलने के लिए कहता है तो भीतर वाले उसे न अंदर आने देते हैं और न दरवाजा खोलते हैं। साम्प्रदायिक दंगों के कारण कैसे जीवन में दया, त्याग, मानवता आदि मूल्य बिखरकर टूट जाते हैं। इसका यथार्थ चित्रण इस कहानी में हुआ है। लेखक स्वयं बीते दिनों की याद करता है जब पाकिस्तान बनने का ऐलान किया गया था। इस समय लेखक का वक्तव्य दृष्टव्य है, ''उन दिनों के बारे में सोचता हूँ, तो लगता है, हम किसी झुटपुटे में जी रहे थे। शायद समय बीत जाने पर अतीत का सारा व्यापार ही झुटपुटे में बीता जान पड़ता है। ज्यों–ज्यों भविष्य के पट खुलते जाते हैं, यह झुटपटा और भी गहराता चला जाता है।''[3]

इस कहानी में लेखक ने जिस समय पाकिस्तान के निर्मिती का सिर्फ ऐलान हुआ था तभी से लोग कैसे अपने–अपने ढंग से पाकिस्तान और हिंदुस्तान के बंटवारे के बारे में सोचने लगे थे, इस यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है। अमृतसर की ओर जाने वाली रेलगाड़ी में अनेक लोग थे जो भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों के थे। किस प्रकार से अमृतसर जाने वाले लोग बेचैनी से और कभी–कभी विवेकहीन होकर व्यवहार कर रहे थे इसका चित्रण लेखक ने किया है। रेल के डिब्बे में मात्र फसाद के भय से जो आतंक छा जाता है उसका सजीव चित्रण किया गया है। ''भागते व्यक्ति, खटाक से बंद होते दरवाजे, घरों की छतों पर खड़े लोग, चुप्पी और सन्नाटा, सभी दंगों के चिन्ह थे।''[4] यह सिर्फ फसाद का भय था। लोग इस कदर डर चुके थे कि पानी के लिए भी नीचे नहीं उतर रहे थे। रेल जब पाकिस्तान में होती तो हिन्दू लोग चुपचाप बैठे रहते थे। मुसलमान लोग हिन्दुओं पर अत्याचार करते हुए भी हिन्दू लोग चुपचाप बैठे रहते थे। जैसे ही रेल पाकिस्तान छोड़ भारत के इलाके में पहुंचती तो हिन्दुओं के शरीर में का जानवर जिंदा हो जाता था। जैसा अत्याचार मुस्लिमों ने किया था हिन्दुओं के साथ, वैसा ही अत्याचार हिन्दू मुस्लिम के साथ करते थे। डिब्बे में कुछ मुस्लिम पठान बैठे हुए है जो सामने बैठे एक हिन्दू युवक का मजाक उड़ाते हुए उसे अपमानित करते हैं। सारे अत्याचार वह युवक सह लेता है क्योंकि वह उस हिन्दू युवक का इलाका नहीं था। वजीराबाद स्टेशन पर एक हिन्दू परिवार डिब्बे में आने का प्रयास करता है तो वे मुस्लिम पठान उन्हें रोकने की कोशिश करते हैं। डिब्बे में आने के बाद उस व्यक्ति की पत्नी की छाती पर लात भी मारते हैं। पठान उनका सामान नीचे फेंक देते हैं। इसलिए हिन्दू परिवार नीचे उतर जाता है। वह हिन्दू जवान यह सब कुछ देखकर भी खामोश रहता है। धीरे–धीरे रेल हिन्दुओं के इलाके में आ जाती है, तो उस हिन्दू युवक में परिवर्तन आता है। जैसे ही रेलगाड़ी अमृतसर के पास आने लगी वह युवक मुस्लिम पठानों को गालियाँ देने लगा और ऊँची आवाज में चिल्लाने लगा कि, 'अमृतसर आ गया है।' जब

मुस्लिम पठान रेल में हिन्दू लोगों पर अन्याय करते हैं तब रेल पाकिस्तान के इलाके में थी। यह हिन्दू जवान चुपचाप बैठा था क्योंकि वह मुसलमानों का इलाका था। अमृतसर आते ही वह हिन्दू जवान नीचे उतर कर बाहर गया। मुस्लिम पठान उसके इरादों को जान गए और झट से अपना सामान लेकर बाहर गए। वह हिन्दू युवक पूरी तैयारी के साथ लौटा, उसके हाथ में लोहे की छड़ थी। जब मुस्लिम पठान लोग उसे वहाँ दिखाई नहीं देते तो वह गालियाँ देता है। एक स्टेशन पर मुस्लिम परिवार डिब्बे में आने का प्रयास करता है तो यह हिन्दू युवक उसे अंदर आने नहीं देता और लोहे की छड़ से उस बूढ़े का सिर फोड़ देता है। बूढ़ा नीचे गिर जाता है। थोड़ी देर बाद हिन्दू जवान में परिवर्तन आता है। उसमें का इंसान जीवित होता है। वह एक बुत–सा खड़ा रहता है। हाथ में की लोहे की छड़ वह फेंक देता है।

इस कहानी में उस हिन्दू युवक का पश्चाताप कहानी को और अधिक सशक्त बनाता है। प्रसंगवश व्यक्ति कभी भावना में बह जाता है, पशु बन जाता है लेकिन सामान्य अवस्था में वह व्यक्ति पुनः मनुष्य बन जाता है। प्रतिशोध के कारण ही वह हिन्दू युवक मुसलमानों पर आघात करता है, लेकिन फिर पश्चाताप करता है, डर जाता है। इस कहानी के संदर्भ में डॉ. प्रमिला अग्रवाल का विचार अत्यंत सार्थक लगता है, ''भीष्म साहनी की अमृतसर आ गया है ऐसी कहानी है जो स्थिति सापेक्ष क्रूर मानसिकता का बोध जगाती है। विभाजन के समय का माहौल कैसे मानवीय संबंधों की सहजता को समाप्त कर उसमें हत्यारी मनोवृत्तियाँ पैदा करता है, इसका सटीक चित्रण कहानीकार ने इस कहानी में किया है।''[5] डॉ. अग्रवाल के उक्त विचार जहाँ मानवीय संबंधों की सहजता को समाप्त कर हत्यारी मनोवृत्तियों को दर्शाते हैं वहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आदमी पर जब कोई जुनून सवार हो जाता है तब उसे और कुछ दिखाई नहीं देता। देश के बंटवारे ऐसे तक नहीं अनेक उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं।

भीष्म साहनी की कहानियाँ पढ़ने पर यह महसूस होता है कि लेखक जो कहना चाहता है जिन्दगी के बारे में उसकी पक्षधरता यथार्थ के प्रति है। भीष्म साहनी में अन्तर्विरोध को पकड़ने की गम्भीर दृष्टि है और यथार्थ अंकन में सूक्ष्म कला के अच्छे जानकार हैं। फिर भी शुरुआती दौर में इन बातों की कमी महसूस होती है, मसलन 'जोत', 'मुर्गी' की कीमत', 'नीली आँखें, 'ऊब', 'भाग्यरेखा', 'क्रिकेट मैच', 'घर की इज्जत' आदि कहानियाँ।

विभाजन की त्रासदी को लेकर लिखी कहानी 'अमृतसर आ गया है' की कथा 'तमस' जैसे उपन्यास की आधारशिला है। 'अमृतसर आ गया है' कहानी में ट्रेन के एक कंपार्टमेंट का चित्रण है, जिसमें हिन्दू मुस्लिम, सिख बैठे हैं। जगह कम है, लोग ज्यादा हैं। इसलिए जो पहले से आसन जमाए बैठे हैं, वे आने वालों को कंपार्टमेंट में चढ़ने नहीं देते और अगर कोई चढ़ जाता है तो उसे बैठने नहीं देते। ऊपर के बर्थ पर एक पठान लेटा रहता है और कुछ बोलता जाता है। नीचे एक हिन्दू बाबू बैठा उसका व्यवहार देखता रहता है। तभी पठान एक हिन्दू औरत जो गर्भवती रहती है, नीचे उतरकर उसके पेट में लात मारता है और वह तिलमिलाकर बैठ जाती है। बाबू अन्दर ही अन्दर तमतमा जाता है, क्योंकि उस वक्त वहाँ पर पठानों की संख्या ज्यादा रहती है। परन्तु जैसे ही अमृतसर आता है, बाबू शेर हो जाता है। तद्विषयक उदाहरण दृष्टव्य है–

''शहर आ गया! वह फिर ऊँची आवाज में चिल्लाया, अमृतसर आ गया है। उसने फिर से कहा और उछलकर खड़ा हो गया, और ऊपर वाली बर्थ पर लेटे पठान को सम्बोधन करके चिल्लाया, ओ बे पठान के बच्चे! चिल्लाने लगा था और चीख–चीखकर गालियाँ बकने लगा था।''[6] कथाकार भीष्म साहनी ने न जाने कहाँ से शक्ति आ जाती है। भीष्मजी ने उस बाबू के माध्यम से एक सहज मानवीय प्रवृत्ति जो अपने परिवेश में प्रकट हो जाती है, चित्रित करते हैं।

भीष्म साहनी जी की कहानियों में 'ओ हरामजादे' बहुचर्चित कहानी है। ओ हरामजादे कहानी में एक प्रवासी भारतीय की कहानी है, जिसमें लाल नाम इंजीनियर के अपने देश की प्रति अद्भुत प्रेम का वर्णन किया है। उदाहरण दृष्टव्य है– ''हेलन यह आदमी जालन्धर से आया है, मेरे शहर से, तुमने बताया नहीं। उत्तेजना के कारण उसका चेहरा दमकने लगा था और बड़ी–बड़ी आँखों के नीचे गूमड़ों में नमी आ गयी थी।''[7]

इंजीनियर 'लाल' के लिए देश प्रेम का मतलब उसके लिए देश की प्रकृति नहीं, बल्कि देश का वासी और देश की संस्कृति भी है। देश प्रेम के दूसरे छोर पर लाल का पत्नी प्रेम है। कहानी इन दोनों के तनावों के

बीच ही रूप ग्रहण करती है। यद्यपि तनाव कभी विस्तार नहीं ले पाता। लाल देश प्रेम का परिचय देता है और भारत न लौटने का निश्चय करके पत्नी प्रेम का परिचय देता है।

भीष्म जी उन कहानीकारों में से हैं, जिन्होंने कथा साहित्य की जड़ता को तोड़ा है और उसे सामाजिक आधार देकर एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने सामाजिक विसंगतियों, संकीर्णताओं और विषमताओं से निराश पलायनवादी रुख के स्थान पर उन कारणों की ओर इशारा किया, जिसकी वजह से साहित्य में ये चीजें पनपीं। उन्होंने कहानियों में 'व्यक्ति' के स्थान पर 'मनुष्य' को रखा। स्वाधीनता आन्दोलन, साम्प्रदायिक दंगे, दोगली राजनीति, गड़बड़ाते जीवन–मूल्य, सस्ती नेतागिरी हमारे इतिहास के हिस्से हैं। अतः सूत्रों की पहचान सही लेखन के लिए जरूरी शर्त है और भीष्म साहनी का लेखन उसे पूरा करता है। सिकुड़ते हुए आर्थिक अवसरों के उस दौर में साम्प्रदायिकता की जड़ें मध्य वर्ग में विहित थीं तथा उसके द्वारा मध्यवर्ग ने अपने हितों और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया। अतः साम्प्रदायिकता का सवाल हर तरह से मध्य वर्ग का सवाल था। साम्प्रदायिकता इसी वर्ग को आकर्षित करती थी तथा यही उसका सामाजिक आधार भी था।

''साम्प्रदायिकता अक्सर शोषकों और शोषितों के बीच के सामाजिक तनाव और वर्ग–संघर्ष को विकृत कर सिर्फ इस आधार पर साम्प्रदायिक संघर्ष में बदल देती थी, कि वे अलग–अलग धर्म या सम्प्रदाय से उनका कुछ भी लेना देना नहीं था। लेकिन राजनीतिक जागरूकता के अभाव में उन्हें साम्प्रदायिक संघर्षों के रूप में विकृत अभिव्यक्ति मिली।''[8]

भीष्म साहनी ने देश विभाजन की त्रासदी को अपनी प्रसिद्ध रचना 'तमस' में चित्रित किया है। इस उपन्यास में उन्होंने ''आजादी के ठीक पहले साम्प्रदायिकता की जो नंगा–नाच इस देश में नाचा गया था, उसका अंतरंग चित्रण इस उपन्यास में किया है। काल–विस्तार की दृष्टि से यह केवल पाँच दिनों की कहानी है दहशत के अंधेरे में डूबे हुए पाँच दिनों की कहानी जिसे .... इस खूबी के साथ बुना है कि साम्प्रदायिकता का हर पहलू तार–तार उद्घाटित हो जाता है।''[9] कथाकार भीष्म साहनी ने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण का प्रतिफलन करते हुए अपनी कहानियों में व्यक्त किया है कि धीरे–धीरे साम्प्रदायिकता की भीषण विभीषिका सर्वत्र इस प्रकार फैल गयी, जैसे जंगल की आग हवा के तीव्र झोंकों से अत्यधिक भड़क जाती है और छोटे–बड़े, हरे–सूखे वृक्ष जीव जन्तु सबको अपने में समा लेती है। इसी प्रकार बाल, वृद्ध एवं नर–नारी साम्प्रदायिकता के कराल गालों में समा रहे थे। सबसे अधिक दुर्दशा युवतियों व बच्चों की ही हो रही थी, उन पर नर पिशाच झपट रहे थे।

साम्प्रदायिकता के कारण पलायन की लहर देश के अनेक भागों में फैलती जा रही थी, उसके साथ ही साम्प्रदायिकता की भीषण विभीषिका भी बढ़ती जा रही थी। सामान्य लोगों के साथ जो अत्याचार हो रहे थे, वे काफी बुरे थे। इसी अत्याचार के कारण अनेक लोगों ने धर्म परिवर्तन भी किया। हिन्दू और मुसलमान मिल–जुलकर रहते थे। परन्तु उपनिवेशवादी शासन ने अपने फायदे के लिए हिन्दू और मुसलमानों में धर्म के नाम पर फूट डाला और साम्प्रदायिक दंगे फैलाए। इस अभूतपूर्व हिंसा से लोग इतने आतंकित हो गए कि फसाद होने के बाद एक लहर–सी चल पड़ी थी।

भीष्म जी की कहानियों में यथार्थ के विभिन्न अन्तर्विरोधों, विसंगतियों और विडम्बनाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है। विभाजन की त्रासदी, सांप्रदायिक तनाव, मोहभंग, टूटते–बिखरते मानवीय मूल्य, राजनीतिक, अंतर्विरोध, सामाजिक विसंगतियाँ, मध्यवर्गीय जीवन, व्यापक जीवन बोध का अंग बनकर उनकी कहानियों में मूर्त हुई है। साधारण, निम्न और मध्यवर्गीय जीवन के विविध पहलुओं के उजागर करने वाली इस कहानियों में मनुष्य की जिजीविषा है, कुंठा है, हताशा और निराशा है, दुःख और पीड़ा है, सपने और आदर्श है। जीवन के मूल्य परिवर्तन की स्थितियाँ, बदलाव, संघर्ष, जटिलताओं का सीधा प्रतिबिंब उतारती भीष्म जी की कहानियाँ तरह–तरह से अंतर्विरोधों, विडम्बनाओं और त्रासदियों से भरी है।

इस प्रकार भीष्म साहनी की कहानियों में सांप्रदायिक मानसिकता मानवीय मूल्यों को किस तरह क्षत–विक्षत कर देती है, यह हमें इस प्रभावशाली कहानी में देखने को मिलता है। भारत का विभाजन त्रासद घटना ही नहीं थी बल्कि एक ऐसा तूफान था जिसकी चपेट में आकर हमारी संस्कृति, आदर्श, मानव–मूल्य सभी ध्वस्त हो गए। समग्र कहानी में सांम्प्रदायिकता की समस्या को उसके खौफनाक परिणामों के साथ प्रस्तुत करना ही लेखक का उद्देश्य है। उन दिनों सांप्रदायिकता का विष आदमी के रक्त में इस कदर घुल–मिल गया था

कि सदियों से चली आ रही हिन्दू–मुसलमान भाईचारे की भावना तो जैसे लुप्त हो गई थी। भीष्म जी ने घृणा और दहशत के उस माहौल को पकड़ने की कोशिश इस कहानी में की है।

मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध लेखक जहूर बख्श के जीवन में घटी अत्यंत त्रासद घटना को प्रस्तुत करने वाली 'जहूर बख्श' कहानी एक सच्ची घटना पर आधारित है। स्वयं भीष्म जी ने कहानी के अंत में इसका उल्लेख किया है। जहूर बख्श जिस दीवार के साथ लगकर खड़ा था, वह उसके अपने जले हुए घर की दीवार थी। उसके घर का सामान उसके सामने मैदान में बिखरा पड़ा था। अधजले कागज अभी भी उड़ रहे थे। ये अधजले कागज जहूर बख्श की लिखी कहानियों, अनुवादों, लेखों और पाण्डुलिपियों के अवशेष थे। जहूर बख्श बड़ी साफ लिखाई में लिखता था। जैसे मोती पिरोता हो। पाण्डुलिपियों के अवशेष थे। जहूर बख्श बड़ी साफ लिखाई में लिखता था। जैसे मोती पिरोता हो। पाण्डुलिपियाँ तो दिल के खून से लिखी जाती हैं। एक–एक पाण्डुलिपि पर जिंदगी के वर्षों खप जाते हैं। अधजली किताबें भी बिखरी पड़ी थीं। क्योंकि शहर में दंगा हुआ था। आग लगाने से पहले लोग जहूर बख्श के घर में घुस आये थे। घर का सारा सामान उसकी आँखों के सामने घसीटते हुए लोग उठा ले गये थे। पर किताबों को किसी ने नहीं छुआ। उन्हें तो बाद में आग की नज्र किया गया था। किताबों और पाण्डुलिपियों को तो जहूर बख्श जलते घर में से उठा–उठाकर बाहर लाता रहा था, मानो जीते जागते इन्सानों को बचा रहा हो। उसके हाथ झुलस गये थे और दाढ़ी झुलस गयी थी। फिर भी कुछ किताबें बाहर ले आया था। लेकिन भागते लोगों के पाँव उन पुस्तकों पर बराबर पड़ते रहे थे। एक ठुड्डा लगा तो प्रेमचंद के 'गोदान' की प्रति धूल चाटले लगी। पाण्डुलिपियाँ पन्ना–पन्ना हो गई, रेजा–रेजा और जहूर बख्श दीवार के साथ लगा रूँधे गले से, फटी–फटी आँखों से देखता रहा, मानो अपनी मौत स्वयं देख रहा हो। उसकी तीस वर्षों की साधना मैदान में उड़ते अधजले कागज–भर रह गयी थी। इन कागजों और किताबों को वह सहला–सहलाकर पढ़ा करता था, क्योंकि वे भी किसी भी साधना की देन थी। इन किताबों को बचाने के लिए वह दंगाइयों के समक्ष गिडगिड़ा रहा था कि ''भाइयों, सब कुछ ले लो। जो कुछ है, उठा लो। ये किताबे–कागज छोड़ दो। ये मेरी जिन्दगी–भर की पूँजी हैं। इन्हें छोड़ दो, खुदा के वास्ते! मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ ..... |''[10]

जब दंगे करने वाले जहूर बख्श के घर में घुसे थे तो लोगों के मजमें में उसे विश्वेश्वर का चेहरा नज़र आया था और उसकी टाँगों में थोड़ी ताकत आ गयी थी। बगल वाले मुहल्ले में रहने वाला विश्वेश्वर एक हिन्दी पत्रिका के कार्यालय में काम करता था। वह जहूर बख्श को अच्छी तरह से जानता था और उनकी लेखनी का प्रशंसक था। वह उनसे कहा करता था कि ''जहूर बख्श, तुम हो तो मुसलमान, लेकिन तुम हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाओगे।'' जहूर बख्श के दो–एक लेख विश्वेश्वर ने अपनी पत्रिका में छपवाये भी थे। लेकिन आज वह भी दंगों में जुड़ गया था। जहूर बख्श ने उसे देखते ही चिल्लाकर कहा था, ''विश्वेश्वर भैया, तुम तो मुझे जानते हो!'' लेकिन देखते ही देखते वह भीड़ में खो गया था। जैसे धरती उसे लील गई हो।

'पाली' कहानी में उस इंसानी रिश्ते को महत्व दिया है, जो धर्म, संप्रदाय, वर्ग और वर्ण की दीवारें लांघकर आदमी और आदमी के बीच एकात्म कायम करता है। संवेदना के जिस बिंदु पर पहुंचकर किसी धर्म, जाति, सम्प्रदाय–सब पृष्ठभूमि में चला जाता है। उजागर होता है, निर्मल निश्चल अनुभूति का वह रिश्ता, जहाँ कोई भेद नहीं, कोई दीवार नहीं। इस कहानी में उसी जमीन की तलाश लेखक ने की है। देश–विभाजन के समय मनोहरलाल का बेटा पाली काफले से अलग होकर पाकिस्तान में ही रह जाता है। मनोहरलाल अपनी पत्नी तथा छोटी–सी बच्ची को लेकर हिन्दुस्तान चला आता है। काफिले से पाली का बिछड़ जाना एक ऐसा हादसा था, जिसे न तो मनोहरलाल भूल पाता है और न ही उसकी पत्नी।

भारत से गई समाज सेविका बच्चे को मनोहरलाल को सौंपने की जिद कर रही थी। मामला उलझकर हिन्दू–मुसलमान का बनने लगा। मनोहरलाल को और तो कुछ नहीं सूझा, वह चुपचाप टाट के पर्दे के पास जाकर जैनब से कहता है कि ''बहन, मैं तुमसे बच्चे की नहीं, अपनी घरवाली की जान की भीख माँगने आया हूँ। वह अपने दोनों बच्चे खो चुकी है। पाली के बिना वह पागल हुई जा रही है। वह दिन–रात तड़पती रहती है। उस पर तरस खाओ।'' मनोहरलाल की बेबसी और छटपटाहट जैनब के दिल को हिला देती है। न चाहते

हुए भी वह दिल पर पत्थर रख के कहती है– ''ले जाओ अपने बच्चे को। हम नहीं चाहते किसी बदनसीब की बद्दुआ हमें लगे .....।''[11]

मनोहरलाल को बच्चा मिल जाता है। उसे हिन्दुस्तान लाया जाता है और उसे धर्मान्तरित करके पुनः हिन्दू बना लिया जाता है। किंतु, वह अपने मुसलमान माँ–बाप को भूल नहीं पाता। समय होते ही उसके हाथ नमाज़ के लिए उठ जाते हैं। पंडित क्रोधित होते हैं, पर मनोहरलाल पंडित को समझाते हैं। बच्चा धीरे–धीरे नए वातावरण में अपने को ढालने लगता है। उधर उसी समय, सैकड़ों मील दूर अपने सूने आँगन में बैठे जैनब और शकूर तरह–तरह के कयास लगा रहे थे। जैनब पति शकूल से कहती है कि बच्चे के चले जाने से घर की सारी रोनक चली गई। उसका मन करता कि वह अभी उसके पास चली जाएं, पर यह संभव न था। आँखें पोछती हुई वह आगे कहती है कि ''क्यों जी, ईद पर आएगा ना? उसे वे लोग भेजेंगे ना? क्या हम उसे मिलने नहीं जा सकते? ..... तुम कहते थे ना कि तुम्हारा कोई नाती बरेली में रहता है। हम उसके पास जा रहेंगे और बेटे से मिल आएंगे।''[12]

मानवीय संवेदना के स्तर पर लिखी गई यह कहानी लेखक की मार्मिक कहानियों में से एक है। लेखक ने इसमें सांप्रदायिकता की भयावहता से परे, मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की है।

भीष्म साहनी ने भारत व पाकिस्तान के बंटवारे की विडम्बना को अपने आँखों से देखा ही नहीं, भोगा भी है। स्वाधीनता आंदोलन, स्वतंत्रता की प्राप्ति, साम्प्रदायिक दंगे, वर्ग घृणा का विस्तार, दो गली राजनीति, सस्ती नेता गिरि, अप्सर साही ये सभी साम्प्रदायिक इतिहास के हिस्से हैं जिसका विवेचन भीष्म साहनी ने अपनी कहानियों में यथार्थ रूप से प्रकट किया है।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः भीष्म साहनी की कहानियों में साम्प्रदायिकता का चित्रण भारतीय समाज की उन गहरी सामाजिक–राजनीतिक दरारों को उजागर करता है, जो लंबे इतिहास, सत्ता–चालित नीतियों, आर्थिक असमानताओं और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों से निर्मित हुई हैं। उनके कथा–संसार में साम्प्रदायिकता किसी आकस्मिक घटना के रूप में नहीं, बल्कि एक सतत सामाजिक प्रक्रिया के रूप में उपस्थित होती है – एक ऐसी प्रक्रिया जो मनुष्य के जीवन, संबंधों, निर्णयों और भावनाओं को अनजाने ढंग से प्रभावित करती रहती है। भीष्म साहनी अपनी कहानियों में इस प्रक्रिया के अंतर्सूत्रों को अत्यंत सूक्ष्मता और मानवीय संवेदनशीलता से प्रकट करते हैं। भीष्म साहनी की कहानियों में साम्प्रदायिकता का विश्लेषण केवल घटनात्मक या ऐतिहासिक संदर्भों तक सीमित नहीं है। वे साम्प्रदायिकता की जड़ों को सामाजिक मनोविज्ञान, आर्थिक शोषण, राजनीतिक स्वार्थ, शिक्षा के अभाव, अफवाहों और सामूहिक भय की प्रवृत्ति में खोजते हैं। उनकी दृष्टि का मूल यह है कि साम्प्रदायिकता बाहर से थोपी हुई नहीं होती, बल्कि समाज के भीतर ही पनपती है, अक्सर सामान्य मानवीय संबंधों के बीच, छोटी–छोटी गलतफहमियों में और सामूहिक पहचान के दबावों में। इसी कारण, उनका साहित्य यह रेखांकित करता है कि साम्प्रदायिकता का वास्तविक प्रतिरोध भी समाज के भीतर से ही सम्भव है, संवाद, सहअस्तित्व, पारस्परिक विश्वास और सामाजिक न्याय की पुनर्स्थापना के माध्यम से। भीष्म साहनी का साम्प्रदायिकता–विमर्श मानवीय मूल्यों पर आधारित है। उनकी कहानियों में हिंसा और विद्वेष के बीच भी मनुष्य की करुणा, संवेदना और विवेक जीवित रहता है। पात्र अक्सर भय, भ्रम और सामाजिक दबावों से घिरे होते हुए भी अन्ततः मानवता को चुनते दिखाई देते हैं। यह मानवीय पक्ष उनकी कहानियों को मात्र सामाजिक आलोचना से आगे बढ़ाकर एक सकारात्मक चेतना का साहित्य बनाता है, ऐसा साहित्य जो विभाजन, दंगे और साम्प्रदायिक उन्माद के अंधकार में भी सहअस्तित्व और मानवीय एकता की संभावना तलाशता है। भीष्म साहनी साम्प्रदायिकता को केवल समस्या के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्य और समाज की एक गहन चुनौती के रूप में देखते हैं। उनकी कहानियाँ इस चुनौती का सामना मानवीय दृष्टि, सामाजिक उत्तरदायित्व और राजनीतिक–सांस्कृतिक सजगता के माध्यम से करती हैं। इसीलिए, उनका साहित्य समकालीन भारत के लिए न केवल प्रासंगिक है, बल्कि एक गंभीर चेतावनी भी है कि यदि समाज संवाद, सहिष्णुता और न्याय की मूल्य–व्यवस्था को नहीं अपनाएगा, तो साम्प्रदायिकता जैसी विभाजनकारी शक्तियाँ लगातार मानवीय संबंधों और सामाजिक सौहार्द को विघटित करती रहेंगी। इस

प्रकार, भीष्म साहनी की कहानियों में साम्प्रदायिकता का अध्ययन हमें यह सिखाता है कि साहित्य केवल सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि समाज को अधिक मानवीय, संवेदनशील और न्यायपूर्ण बनाने का प्रभावी माध्यम भी है।

संदर्भ –

[1] साहनी, भीष्म – वाङ्चू, मालिक का बंदा, पृष्ठ 60
[2] साहनी, भीष्म – पटरियाँ प्रकाशकीय वक्तव्य से
[3] साहनी, भीष्म – पटरियाँ, अमृतसर आ गया है, पृष्ठ 21
[4] साहनी, भीष्म – पटरियाँ, अमृतसर आ गया है, पृष्ठ 24
[5] अग्रवाल, डॉ. प्रमिला – भारत विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य, पृष्ठ 61
[6] साहनी, भीष्म – प्रतिनिधि कहानियाँ, पृष्ठ 72
[7] साहनी, भीष्म – प्रतिनिधि कहानियाँ, पृष्ठ 80
[8] बिपिनचन्द्र – भारत का स्वतन्त्रता संग्राम, पृष्ठ 325
[9] आजकल – फरवरी 2004, पृष्ठ 38
[10] साहनी, भीष्म – जहूरबख्श, पृष्ठ 122
[11] साहनी, भीष्म – पाली, पाली, पृष्ठ 28
[12] साहनी, भीष्म – पाली, पाली, पृष्ठ 34